शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

भाद्रपद : २४८० ❀ वर्ष दसवाँ ❀ अंक पाँचवाँ

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी वकील

सिद्ध और संसारी

जैसा सिद्ध परमात्मा का स्वभाव है, वैसे ही स्वभाववाला आत्मा इस देह में विद्यमान है। सिद्ध भगवान में और इस आत्मा के स्वभाव में परमार्थतः कुछ भिन्नता नहीं है, जितना सामर्थ्य सिद्ध भगवान के आत्मा में है, उतना सामर्थ्य प्रत्येक आत्मा में भरा है। सिद्ध परमात्मा अपने स्वभावसामर्थ्य की प्रतीतकर उसमें लीनता द्वारा पूर्ण ज्ञान-आनंद प्रगट कर मुक्त हो गये हैं; और अज्ञानी जीव अपने स्वभावसामर्थ्य को भूलकर, रागादि में ही अपनापन मानकर संसार में भटकता है।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[११३]

एक अंक
चार आना

जैन स्वाध्याय मन्दिर : सोनगढ़ सौराष्ट्र

कहाँ अटका ?

अज्ञानी जीव संसार से भिन्न अपने चैतन्यस्वरूप को भूलकर देश के, पर के, घर के और शरीर वगैरह के कार्य करने के अभिमान में अटकता है, बहुत तो धर्म के नाम पर दया-व्रत वगैरह के शुभराग में धर्म मानकर वहाँ अटक जाता है; परन्तु शरीरादि की क्रिया से भिन्न और शुभराग से भी पृथक् ऐसे अपने ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा का लक्ष नहीं करता, इसलिये उसके जन्म-मरण के दु:खों का अंत नहीं आता। अनादिकाल से पुण्य किया तो भी जीव संसार में ही भटकता रहा, इसलिये संसार का मूलकारण क्या है ? जानकर तुझे उसे दूर करने का उपाय करना चाहिये।

श्री मानस्तंभ फंड खाते बाकी रही रकमें

श्री मानस्तंभ फंड खाते लिखाई गई अथवा प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर बोली गई निम्नलिखित रकमें आना बाकी हैं। जिनकी रकमें बाकी हैं, उनके पूरे पते मिलते नहीं, अत: उन नामों की सूची यहाँ दी जा रही है। जिन भाई-बहिनों की रकमें बाकी हों, वे याद कर अपने पूरे नाम पते सहित भिजवाने की कृपा करें।

व्यवस्थापक

श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़

६१) झबकबेन

५१) जयाकुंवरबेन

११) गोकलदास गुलाबचंद

३१) खेमचंद छगनलाल अजमेरा

१०२) सेठ मानमलजी

११) रतिलाल वर्धमान मोदी

५१) वल्लभदास मथुरदास

५१) वासंतीबेन

१०१) जयंतीभाई, राजकोट

४०) छगनलाल बेचरदास (आरती के)

६२) कल्याणमल फूलचंद, कलकत्ता

१०१) नंदलाल जैन, कलकत्ता

आत्मधर्म

भाद्रपद : २४८० वर्ष दसवाँ अंक पाँचवाँ

अनेकान्तमूर्ति भगवान आत्मा की
कुछ शक्तियाँ

[१५]

परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति

चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा पर से निराला है, उसके स्वभाव में अपने अनंत गुण एकसाथ विद्यमान हैं, उनका यह वर्णन चलता है। अभी तक चौदह शक्तियों का वर्णन हुआ है। चौदहवीं शक्ति में ऐसा कहा है कि आत्मा को किसी भी परद्रव्य के साथ कार्यकारणपना नहीं है। अब आत्मा में स्व-पर के ज्ञाता होने का और स्व-पर के ज्ञेय होने का स्वभाव है—वह बात करते हैं। पर और स्वयं जिनका निमित्त है, ऐसे ज्ञेयाकार तथा ज्ञानाकारों को ग्रहण करने और ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणम्यपरिणामकशक्ति आत्मा में है; इसलिये आत्मा स्व-पर का ज्ञाता हो और स्व-पर का ज्ञेय हो—ऐसा उसका स्वभाव है। पर का करने की बात उड़ाकर फिर यह बात की है। आत्मा में पर का करने की शक्ति नहीं है, परन्तु पर को जानने की शक्ति है, और वह भी अकेले पर को जानने की नहीं किन्तु स्व-पर दोनों को जानने की शक्ति है। तथा आत्मा अन्य का कार्य नहीं होता परन्तु अन्य के ज्ञान का ज्ञेय हो, ऐसा उसका स्वभाव है। आत्मा मात्र पर को ज्ञात हो और स्वयं अपने को ज्ञात न हो—ऐसा नहीं है; परन्तु स्व और पर दोनों का ज्ञेय हो—ऐसा उसका स्वभाव है।

आत्मा स्व-पर दोनों को जानता तो है ही, परन्तु पर का कार्य नहीं करता, कार्य तो मात्र स्व का ही करता है। आत्मा स्वयं ज्ञानरूप होकर स्व-पर को जानता है, आत्मा के ज्ञानाकार में परज्ञेय निमित्त हैं, और पर के ज्ञान में यह आत्मा ज्ञात हो, ऐसा उसका स्वभाव है। अपने ज्ञान को और पर ज्ञेयों को—इसप्रकार स्व-पर दोनों को ग्रहण करे अर्थात् जाने, ऐसी आत्मा की परिणम्यशक्ति है। तथा स्व-पर दोनों के ज्ञान में ग्रहण हो अर्थात् ज्ञात हो, ऐसी आत्मा की परिणामकशक्ति है; इसप्रकार आत्मा परिणम्य-परिणामक शक्तिवाला है। इस शक्ति में ज्ञान और प्रमेयत्व दोनों भावों का समावेश हो जाता है।

आत्मा स्वयं अपने को और पर को जाने, ऐसी उसकी शक्ति है, और अपने तथा पर के ज्ञान का ज्ञेय हो, ऐसी आत्मा की शक्ति है। इसके अतिरिक्त पर के साथ कारण-कार्यादि कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा के ज्ञानपरिणाम में भी ज्ञेय निमित्त हैं, और पर जीवों के ज्ञान में स्वयं निमित्त हैं; पर-ज्ञेयों को जानने के स्वभावरूप परिणमित होने की शक्ति तो आत्मा की अपनी है, कहीं परज्ञेयों के कारण ज्ञान नहीं होता और आत्मा स्वयं अपने ज्ञान में ज्ञात हो, यह बात भी इस शक्ति में समा जाती है।

वाणी ज्ञेय है, उस ज्ञेय को जानने की आत्मा की शक्ति है परन्तु उस ज्ञेय के कारण ज्ञान हुआ -ऐसा नहीं है; और अनंत सिद्ध भगवन्त, अरहन्त भगवंतादि के ज्ञान में प्रमेय होने का आत्मा का स्वभाव है और स्वयं अपने ज्ञान में अनंत सिद्ध भगवन्त, अरिहन्त भगवन्तादि को जाने-ऐसी आत्मा की शक्ति है। भगवान! यह तेरे सामर्थ्य की बात चल रही है। तुझे अपनी सामर्थ्य की महिमा भासित नहीं हुई है, इसलिये पर को महिमा देकर भटक रहा है; यदि स्वभाव-सामर्थ्य की महिमा को समझ ले तो पर की महिमा दूर हो जाए और परिभ्रमण का अन्त आए। तुझमें अपना स्वयं का और पर का ज्ञान करने की शक्ति है, और अपना तथा पर का ज्ञेय होने की शक्ति है। तेरी एक-एक पर्याय में स्व-पर का ज्ञान करने की और स्व-पर का ज्ञेय होने की शक्ति है।—यह समझे तो 'स्वयं अपने को ज्ञात नहीं हो सकता'—ऐसी शंका न रहे। आत्मा मात्र पर को ही जानता है—ऐसा जो मानता है, उसे आत्मा के स्वभाव का भान नहीं है। आत्मा में ऐसी दुगुनी शक्ति है कि वह स्व और पर दोनों को एक समय में जान सकता है। शरीर चले अथवा रोग हो, उसे जानने की आत्मा की शक्ति है परन्तु शरीर को लाने की अथवा रोग को दूर करने की आत्मा की शक्ति नहीं है।

जगत में कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है कि उसे जानने की सामर्थ्य आत्मा में न हो। परिपूर्ण

जाने, ऐसा आत्मा का स्वरूप है; अपूर्ण जाने, राग-द्वेष हो, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। आत्मा को पर्याय में धर्म होता है और स्वयं को उसकी खबर नहीं हो सकती-ऐसा जो मानता है, उसने आत्मा की इस शक्ति को नहीं माना है। आत्मा में जो धर्म पर्याय प्रगट हुई, वह पर्याय स्वयं अपने को जानती है, त्रिकाली द्रव्य-गुण को जानती है और पर को जानती है-ऐसी उनकी सामर्थ्य है। ज्ञान कहीं अंधा नहीं है कि वह स्वयं अपने को न जाने। धर्मी जानता है कि 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी।' आत्मा के ज्ञातास्वभाव में स्वयं अपने को जानते हुए लोकालोक भी ज्ञात हो—ऐसा स्व-पर प्रकाशक सामर्थ्य है।

स्व-पर को जाने और स्व-पर का ज्ञेय हो, ऐसी परिणम्य-परिणामक शक्ति मात्र जीव में ही है, इसलिये वह विशेष है; प्रमेयत्वगुण तो समस्त द्रव्यों में है, परन्तु स्व-पर को जानने की सामर्थ्य जीव के अतिरिक्त अन्य किसी द्रव्य में नहीं है। जीव में तो ज्ञातापना और प्रमेयत्वपना (-ज्ञेयपना) दोनों हैं, इसलिये जीव की सामर्थ्य दुगुनी है। जड़ द्रव्य में अपने को अथवा पर को जानने की शक्ति नहीं है; मात्र जीव का प्रमेय होने की उसकी शक्ति है। जीव को कुछ करे-ऐसी कोई शक्ति जड़ में नहीं है। जड़ में ज्ञान नहीं है, इसलिये वे जड़ पदार्थ आत्मा को विषय (प्रमेय) बनाएँ—ऐसी उनमें शक्ति नहीं है; आत्मा में ही ऐसी शक्ति है कि स्वयं स्व-पर ज्ञेयों को ज्ञान का विषय बनाए, और स्व-पर के ज्ञान का विषय बने। जो ऐसे स्वभाव को जान ले, उसे पर की ओर से उदासीनता हुए बिना नहीं रहती, और स्वभाव धर्म में शंका नहीं रहती; स्वयं अपने धर्म को वह निःशंकरूप से जान लेता है। आत्मा के ऐसे स्वभाव को जानता हो, उस जीव को "मैं अपना कार्य नहीं कर सकता"—ऐसा अनुत्साह भाव नहीं रहता, इसलिये पर से उदासीनता होकर स्वभाव का उत्साह बढ़ता है। मैं अपने आत्मा को नहीं पहिचान सकता—ऐसा वह अनुत्साहित नहीं होता; इसलिये जो ऐसी प्रतीति करे, उसके आत्मा की कोई शक्ति हीन नहीं रहती, परन्तु अल्पकाल में पूर्णता हो जाती है।

मैं स्व-पर का प्रकाशक हूँ और स्व-पर के ज्ञान का ज्ञेय होने का मेरा स्वभाव है—ऐसा जानकर स्वयं अपने आत्मा को ही अपने ज्ञान का ज्ञेय बनाकर एकाग्र होने से उस पर्याय में दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप—इन चारों आराधनाओं का समावेश हो जाता है। ज्ञान को अन्तर्मुख करके अपने आत्मा को ज्ञेय बनाना, वह मोक्षमार्ग है।

अहो! आत्मा के आनंद में झूलते-झूलते वीतरागी संतों ने आत्मा की शक्तियों का अद्भुत

वर्णन किया है। आत्मा में तो एक साथ अनन्त शक्तियाँ हैं, परन्तु भाषा में तो कुछ ही आती हैं; इसलिये यहाँ ४७ शक्तियों का वर्णन करके फिर ''इत्यादि...'' कहकर आचार्यदेव समेट लेंगे। संत कहते हैं कि अहो! कितने नाम लिये जायें? शब्द अल्प हैं और आत्मा की शक्तियाँ अनंत हैं, तब फिर भाषा से कैसे पूरा पड़ सका है? अनंत शक्तियों का पृथक्-पृथक् वर्णन हो सके, ऐसे शब्द ही कहाँ हैं? और ऐसा समय भी कहाँ है? हमें तो अपने आत्मा का कार्य करना चाहिए! हमें अपना केवलज्ञान लेने का कार्य करना है। हम केवलज्ञान प्रगट करेंगे उसमें अनंत शक्तियाँ प्रत्यक्ष दिखाई देंगी; वाणी में सब कुछ नहीं आता, तथापि यहाँ जो शक्तियों का वर्णन किया है, उसमें आचार्यदेव ने बहुत-बहुत रहस्य भर दिया है।

आत्मा में अनादि-अनंत एक ऐसी शक्ति है कि स्वयं ज्ञाता भी हो और ज्ञेय भी हो, स्वयं अपना भी हो और पर का भी ज्ञाता हो; और अपना ज्ञेय हो और पर के ज्ञान का भी ज्ञेय हो।—आत्मा की ऐसी शक्ति को परिणम्य-परिणामक शक्ति कहते हैं। आत्मा पर को नहीं जानता अथवा स्वयं अपने को नहीं जानता—ऐसा जो मानता है, उसने आत्मा की इस शक्ति को नहीं जाना है, इसलिये वह आत्मा को ही नहीं समझा है।

आत्मा में स्व-पर का ज्ञेय होने का स्वभाव है-ऐसा कहा, परन्तु उससे ऐसा नहीं समझना कि इन्द्रियज्ञान से भी आत्मा ज्ञाता होता है। आत्मा, इन्द्रियज्ञान से ज्ञात नहीं होता—ऐसा उसका सूक्ष्म स्वभाव है, और अतीन्द्रियज्ञान से ज्ञात हुए बिना न रहे-ऐसा उसका स्वभाव है।

आत्मा का ज्ञान स्व-पर दोनों को जाननेवाला है; इसलिये सबको जानने का ज्ञान का स्वभाव है, परन्तु कहीं राग-द्वेष करने का ज्ञान का स्वभाव नहीं है। चारित्र के अपराध से राग-द्वेष हों, उन्हें भी जानने की ज्ञान की शक्ति है और वे राग-द्वेष, ज्ञान के ज्ञेय हाते हैं। देखो, राग में ऐसी शक्ति नहीं है कि स्व-पर को जान सके, परन्तु ज्ञान में ऐसी शक्ति है कि स्व-पर को जान ले और शरीरादि पर वस्तुओं में ऐसी योग्यता है कि ज्ञान के ज्ञेय हों, परन्तु ज्ञान को कुछ लाभ-हानि करें - ऐसी सामर्थ्य उनमें नहीं है। और ज्ञान में ऐसी शक्ति है कि समस्त ज्ञेयों को जाने, परन्तु किसी ज्ञेय में फेरफार करे - ऐसी उसकी शक्ति नहीं है। जिसप्रकार स्वच्छ दर्पण में सामनेवाले पदार्थ ज्ञात हों-ऐसी उसकी योग्यता है और सामनेवाले पदार्थों में भी उस प्रकार की योग्यता है; किन्तु सामनेवाले पदार्थों में दर्पण कुछ भी नहीं करता; उसी प्रकार आत्मा के स्वच्छ ज्ञान-दर्पण में समस्त पदार्थ अवभासित हो अर्थात् ज्ञात हो, ऐसी उसकी शक्ति और सामनेवाले पदार्थों में भी ऐसा प्रमेय स्वभाव

है। परन्तु इस समय सामने वाले पदार्थों की शक्ति का वर्णन नहीं करना है, इस समय तो आत्मा की शक्तियों का वर्णन करना है। स्व-पर को जानने की और स्व-पर का प्रमेय होने की आत्मा की शक्ति है। आत्मा की यह शक्ति उसके द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त है, इसलिये द्रव्य भी ज्ञात होता है। गुण भी ज्ञात होते हैं और पर्यायें भी ज्ञात होती है; ज्ञान उन सबको जानता है।

आत्मा का ज्ञानस्वभाव तो द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में विद्यमान है, परन्तु राग-द्वेषादि भाव कहीं द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में विद्यमान नहीं है; वे तो मात्र चारित्रगुण की एक समय की पर्याय में व्यापक है। उसी समय साथ में दूसरे अनंत गुणों की पर्यायें वर्तती हैं, उनमें वह राग व्याप्त नहीं होता। ऐसा होने पर भी, अनंत गुणों के शुद्ध पिण्ड पर दृष्टि न रखकर क्षणिक राग जितना ही मैं हूँ, राग हितकर है—ऐसा अज्ञानी अनुभवन करता है, वह मिथ्यात्व है। क्षणिक राग का आदर करके अनंत गुणों का अनादर करना, वह अनंत संसार का अर्थात् अनंत दुःख का कारण है।

राग सम्पूर्ण आत्मा में व्याप्त नहीं है परन्तु ज्ञान सम्पूर्ण आत्मा में व्याप्त है, और प्रमेयत्व भी सम्पूर्ण आत्मा में व्याप्त है। आत्मा के ज्ञान में सब कुछ जानने की शक्ति है; कोई भी द्रव्य गुण-पर्याय आत्मा के ज्ञान में ज्ञात हुए बिना नहीं रहते। यदि पूरा न जाने तो उस ज्ञान का परिणमन अपूर्ण है; पूर्ण ज्ञान में कुछ भी ज्ञात हुए बिना नहीं रहता। यहाँ दृष्टि के विषय में तो पूर्ण स्वभावसामर्थ्य की ही बात है। अन्तर्मुख होकर उसकी प्रतीति करने से शरीर-मन-वाणी अथवा राग-द्वेष यह सब ज्ञान से पृथक् रहे और ज्ञात करने योग्य ही रहे; आत्मा स्व-पर का ज्ञाता हुआ और स्वयं अपना ज्ञेय भी हुआ—ऐसा ज्ञान करना, वह धर्म है। ऐसे ज्ञान के बिना अन्य किसी प्रकार से धर्म नहीं हो सकता।

चौदहवीं अकार्य-कारण शक्ति में ऐसा कहा है कि—आत्मा पर का कारण नहीं है। शरीर का हलन-चलन ज्ञान में ज्ञात हो, ऐसी आत्मा की शक्ति है, परन्तु शरीर के हलन-चलन में कारण हो सके, ऐसी कोई शक्ति आत्मा में नहीं है; और परवस्तु ऐसी पराधीन नहीं है कि वह आत्मा के कारण हलन-चलन करे, और उसमें ऐसी भी शक्ति नहीं है कि वह आत्मा को ज्ञान करने में सहायक हो; उसमें मात्र ज्ञेय होने का स्वभाव है और आत्मा का ज्ञाता स्वभाव है। बस! पर के साथ ज्ञेय ज्ञायक के अतिरिक्त अन्य कोई सम्बन्ध नहीं है। स्व-पर को जाननेवाला और स्व-पर के ज्ञान में ज्ञात होने योग्य—ऐसा मेरा स्वभाव है, परन्तु उससे आगे बढ़कर रागादि को करे, ऐसी कोई त्रैकालिक शक्ति नहीं है। पर्याय में जो क्षणिक रागादि होते हैं, वे कहीं पर के कारण नहीं होते परन्तु वह अपनी ही पर्याय का अपराध है, परन्तु सदैव राग को करता ही रहे, ऐसा आत्मा का स्वरूप नहीं

है और आत्मा, शरीरादि पर के कार्य करे अथवा परवस्तु, आत्मा का कार्य करे—ऐसा कदापि नहीं होता। निमित्त की मुख्यता से कभी कार्य नहीं होता, मात्र कथन होता है। जैसे, घी का घड़ा कहा जाता है, होता नहीं।

आत्मा स्व-पर का ज्ञेय होता है—ऐसा कहा, वहाँ पर का अर्थात् दूसरे जीवों के ज्ञान का ज्ञेय होता है परन्तु कहीं जड़ का ज्ञेय नहीं होता; क्योंकि जड़ में ऐसी शक्ति नहीं है कि वह किसी को ज्ञेय बना सके। जड़ को किंचित् खबर नहीं है, परन्तु आत्मा को अपनी और जड़ को—दोनों की खबर है। आत्मा के ऐसे स्वभाव को जानने से स्वयं को अपनी खबर पड़ती है। ''सम्यक्दर्शन तो अरूपी सूक्ष्म वस्तु है, इसलिये आत्मा को उसकी खबर नहीं पड़ती''—ऐसा अज्ञानी मानते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। अपने में सम्यक्दर्शन पर्याय प्रगट हुई, उसे भी ज्ञेय करने की आत्मा की शक्ति है। यदि स्वयं को अपनी खबर पड़े तो नि:शंकता कैसे हो? और स्वभाव की प्रतीति में नि:शंकता हुए बिना साधक जीव, वस्तु की साधना कैसे करे? ज्ञान जागृत हुआ और प्रतीति हुई, वहाँ स्वभाव का सन्देह नहीं रहता।

राग-द्वेष में ज्ञान का ज्ञेय होने की योग्यता है, परन्तु उस राग-द्वेष में ऐसी शक्ति नहीं है कि वह जाने, अथवा जानने को सहायता दे। व्यवहाररत्नत्रय का जो शुभराग है, वह ज्ञान का ज्ञेय है, परन्तु वह ज्ञान में सहायक नहीं है। और ज्ञानस्वभाव में ऐसी शक्ति है कि वह स्व-पर सबको जाने, राग को भी जाने; परन्तु राग को उत्पन्न करे अथवा उससे लाभ ले—ऐसा उसका (ज्ञानस्वभाव का) स्वरूप नहीं है।

इस जगत् के अनंतानंत पदार्थों में कोई जीव है, कोई जड़ है; जीव है, वह जीव के कारण है और जड़ है, वह जड़ के कारण है, किसी के कारण कोई नहीं है। कोई कहे कि 'यह जीव क्यों?'—तो कहते हैं कि ऐसा ही उसका स्वभाव है; 'यह जड़ क्यों?' तो कहते हैं कि ऐसा ही उसका स्वभाव है। जिसप्रकार चेतन और जड़ पदार्थ अपने-अपने स्वभाव से ही चेतन या जड़ हैं, उनका अन्य कोई कारण नहीं है; उसीप्रकार उन चेतन और जड़ पदार्थों की प्रत्येक समय की अवस्था भी अपने-अपने कारण से है। कोई पूछे कि 'ऐसी पर्याय क्यों हुई?'—तो कहते हैं कि ऐसा ही उनका पर्यायस्वभाव है, अन्य कोई उनका कारण नहीं है। जो द्रव्य, जो गुण, जो पर्याय जैसी है, वैसा ही उसे जाने—ऐसा आत्मा का ज्ञायकस्वभाव है, ऐसे स्वभाव के निर्णय से सम्यग्ज्ञान और वीतरागता होती है। ऐसे स्वभाव का निर्णय किये बिना कभी भी सम्यग्ज्ञान या वीतरागता नहीं हो सकती।

आत्मा का ऐसा स्वभाव है कि शरीरादि की जो क्रिया हो, उसके ज्ञानरूप से परिणमित हो, परन्तु शरीरादि की क्रिया को करनेरूप परिणमित हो, ऐसी आत्मा की शक्ति नहीं है। मिथ्यादृष्टि आत्मा के ज्ञानस्वभाव को नहीं जानता और पर कर्तृत्व मानता है; परन्तु पर का कर्ता तो वह भी नहीं हो सकता, वह अपने राग-द्वेष-मोह का कर्ता होता है।

कोई कहे कि इस समय तो जीव को देह का संयोग है न ? परन्तु संयोग का अर्थ है पृथक। जीव और देह इस समय भी पृथक् हैं, इसलिये उनका संयोग कहा गया। यदि वे पृथक् न होते किन्तु एकमेक होते तो उसे संयोग नहीं कहा जाता, परन्तु स्वभाव कहा जाता। संयोग तो दो पृथक् पदार्थों का होता है, इसलिये दो पदार्थों का संयोग कहते ही उन दोनों का भिन्नत्व सिद्ध होता है। इस समय भी जीव और शरीर—दोनों 'दो' पदार्थ हैं कि 'एक' है ? जो दोनों एक हों तो संयोग नहीं कहा जा सकता। इस समय भी वे दोनों पृथक्-पृथक् दो पदार्थ हैं। इस प्रकार भिन्नत्व के ज्ञानपूर्वक संयोग को जानना, वह व्यवहार है; परन्तु भिन्नत्व के ज्ञान बिना मात्र संयोग को जानने जायेगा तो उसमें जड़-चेतन की एकत्वबुद्धि से मिथ्याज्ञान हुए बिना नहीं रहेगा। देखो, दूध और पानी का संयोग है परन्तु उन दोनों का स्वभाव भिन्न है, इसलिये अग्नि पर चढ़ाने से पानी भाप बनकर उड़ जाता है और दूध गाढ़ा होकर उसका मावा बन जाता है। दोनों एक ही स्थान पर विद्यमान होने पर भी और दोनों को अग्नि का एक-सा निमित्त होने पर भी दोनों के स्वभाव पृथक् हैं; इसलिये ऐसा होता है। उसीप्रकार आत्मा और शरीर एक ही क्षेत्र में होने पर भी उनका स्वभाव भिन्न है; आत्मा में तो सिद्ध दशा का अभेद भाव प्रगट होता है और शरीर के परमाणु छिन्न-भिन्न होकर उड़ जाते हैं। संयोग के समय भी स्वभाव-की भिन्नता है। मिथ्यादृष्टि जीव, त्रिकाली स्वभाव को न देखकर मात्र संयोग को देखते हैं, इसलिये उनकी दृष्टि पर में से नहीं हटती। छहों द्रव्यों का स्वभाव भिन्न-भिन्न है, और प्रत्येक द्रव्य में अपनी-अपनी काललब्धि है। अकेले जीव में ही काललब्धि है—ऐसा नहीं है, परन्तु प्रत्येक परमाणु में भी उसकी अपनी समय-समय की काललब्धि है, सभी स्वतंत्रतया अपनी काललब्धि से परिणमित हो रहे हैं, जीव उनका कर्ता नहीं है, किन्तु ज्ञाता है।

जीव का स्वभाव स्व-पर ज्ञेयों का ''ग्रहण करने का'' है, ''ग्रहण'' का अर्थ यह नहीं है कि हाथ से परद्रव्य को पकड़ता है; जीव के कहीं हाथ-पैर नहीं हैं कि वह परद्रव्य को पकड़े; ग्रहण करना अर्थात् जानना—ऐसा समझना चाहिए। स्व-पर ज्ञेय कहे, उसमें त्रिकाली द्रव्य-गुण और उनमें अभेद हुई वीतरागी पर्याय, वह स्वज्ञेय है और व्यवहाररत्नत्रय का राग, वह परज्ञेय है,

क्योंकि वह जीव का स्वभाव नहीं है। यह समझने से श्रद्धा-ज्ञान में शुद्ध चैतन्य का ग्रहण हुआ और विपरीत मान्यता का त्याग हुआ, वह अपूर्व धर्म है। यहाँ द्रव्यदृष्टि से आत्मा के त्रिकाली स्वभाव की बात है; यदि उसकी श्रद्धा करे तो पर्याय के रागादि की मुख्यता न रहे परन्तु ज्ञानस्वभाव की मुख्यता-अधिकता रहे; इसलिये जो रागादि हों, उनमें पर्यायबुद्धि न रहे।

बीस वर्ष का इकलौता पुत्र बीमार हो जाये, वहाँ ज्ञान उसे जानता है, तथा बचाने की इच्छा होती है, उसे भी ज्ञान जानता है; परन्तु ज्ञान में या इच्छा में ऐसी शक्ति नहीं है कि पुत्र के शरीर को निरोगी बना दे। इच्छा और राग—दोनों ज्ञान के ज्ञेय हैं; ज्ञान वास्तव में इच्छा को भी नहीं करता, तब फिर वह पर को बचाए, यह बात ही कहाँ रही ?

समवशरण में साक्षात् भगवान बिराज रहे हों, उनकी सेवा का भाव हो और भगवान की मूर्ति की स्थापना करके उनकी भक्ति का भाव आये, परन्तु वहाँ धर्मात्मा जानते हैं कि वास्तव में भगवन इस आत्मा, का कुछ भी नहीं कर देते; भगवान भी मेरे ज्ञान के ज्ञेय हैं। इसीप्रकार जड़कर्म भी ज्ञान के ज्ञेय हैं, राग कराके आत्मा को परिभ्रमण कराएँ, ऐसी शक्ति उनमें नहीं है। कर्मों में ऐसा कोई गुण नहीं है कि वे आत्मा को परिभ्रमण कराएँ; तब फिर कर्म, आत्मा को परिभ्रमण कराते हैं, यह बात कहाँ से लाया ? कर्म भी ज्ञेय हैं और तुझमें उन्हें भी जानने की शक्ति है। देखो, यह ज्ञानसामर्थ्य की महिमा ! अमुक निमित्त से लाभ होता है और अमुक से हानि होती है, यह बात ही नहीं रहती; ज्ञान में सब ज्ञेय है, उसमें वीतरागभाव है। यह इष्ट और यह अनिष्ट—ऐसा ज्ञान में नहीं है और ज्ञेय में भी नहीं है। इसमें ज्ञान की पुष्टि होती है और निमित्ताधीन दृष्टि नाश होती है।

विकार को करे, ऐसा भी आत्मा का त्रिकालीस्वभाव नहीं है; तब फिर जड़ को या पर को करे—यह तो बात ही कहाँ रही ? जिसप्रकार ईश्वर जगत का कर्ता है—ऐसा माननेवाले अन्यमती मिथ्यादृष्टि हैं, उसीप्रकार कोई जैनमतानुयायी भी यदि ऐसा माने कि जड़कर्म, जीव के गुण-दोष का कर्ता है; आत्मा, पर का कर्ता है, तो वे भी मिथ्यादृष्टि ही हैं। जीव, कर्मों को नहीं करते और कर्म जीव को परिभ्रमण नहीं कराते; जीव न तो शरीर में रहता है और न शरीर को चलाता है; जीव तो नित्य अपने अनंतगुणधाम असंख्यप्रदेशों में रहता है। वास्तव में जीव या शरीर कोई मरते नहीं हैं, क्योंकि जीव का या शरीर के रजकणों का सर्वथा नाश नहीं होता, मात्र उनको अवस्था अपने-अपने कारण बदलती रहती है। इसलिये मैं पर जीव को मारता हूँ या बचाता हूँ—ऐसी मान्यता, वह अज्ञान है। आत्मा में ऐसी शक्ति है कि स्व-पर सबको जाने और स्व-पर के ज्ञान में ज्ञात हो। आत्मा

के ऐसे स्वभाव को समझे बिना राग कम करके पुण्य-बंध करे तो भी मिथ्या अभिप्राय के कारण चौरासी के अवतार में परिभ्रमण करेगा ही, परन्तु जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा।

यह आत्मा की त्रिकाली शक्तियों का वर्णन चल रहा है। आत्मा की कोई भी शक्ति पर के या राग के आश्रय से नहीं है, क्षणिक पर्याय के अथवा एक-एक शक्ति के आश्रय से भी वह नहीं है परन्तु अनंतशक्ति के पिण्डरूप आत्मद्रव्य के आश्रय से ही सब शक्तियाँ विद्यमान हैं; इसलिये उस द्रव्यसन्मुख देखकर ही इन समस्त शक्तियों की यथार्थ स्वीकृति हो सकती है।

आत्मा में ऐसी शक्ति नहीं है कि वह दूसरों को समझा दे; परन्तु दूसरों के ज्ञान में ज्ञात हो और स्वयं को जाने, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। ज्ञानस्वभाव की महिमा का विश्वास करने से अपने में स्व-पर प्रकाशक सामर्थ्य प्रगट हो जाता है, और अन्य जिन जीवों में उसप्रकार का ज्ञानसामर्थ्य प्रगट हो, उनके ज्ञान में ज्ञेय होने का भी आत्मा का स्वभाव है। यदि कोई ऐसा माने कि केवली भगवान इस आत्मा की तीनोंकाल की पर्यायों को वर्तमान में नहीं जानते, किन्तु जब जो पर्याय हो, उससमय उसे जानते हैं;—तो उसने आत्मा के प्रमेय स्वभाव को ही नहीं माना है और केवली को भी नहीं माना है; वह जीव स्थूल मिथ्यादृष्टि है। अपने स्वभाव से ही स्व-पर को जाने—ऐसा आत्मा का सामर्थ्य है, उसके बादले जो वाणी-शास्त्रादि से ज्ञान का होना मानता है, उसे भी आत्मा के ज्ञानस्वभाव की खबर नहीं है। परपदार्थों में आत्मा के ज्ञान का ज्ञेय होने का स्वभाव है, परन्तु वे ज्ञान के कारण हों—ऐसा तो उनका भी स्वभाव नहीं है। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों ज्ञान में ज्ञात हों—ऐसा स्वभाव है; यदि तीनों ज्ञान में ज्ञात न हों तो वे ज्ञेय नहीं रहते और उनका सत्पना ही सिद्ध नहीं होता; और यदि ज्ञान में उन तीनों का जानने का सामर्थ्य न हो तो वह ज्ञान ही नहीं रहता। ज्ञान का स्वभाव सबको जानने का है और ज्ञेय का स्वभाव ज्ञान में प्रमेय होने का है। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को न जाने और वस्तु को मात्र नित्य ही माने अथवा सर्वथा क्षणिक ही माने तो वह ज्ञान अप्रमाण है, उसे प्रमाणज्ञान ही नहीं है परन्तु मिथ्याज्ञान है; उस ज्ञान के अनुसार प्रमेय वस्तु जगत में नहीं है और जैसी वस्तु है, वैसा उसे ज्ञान नहीं है। आत्मा के परिणम्यपरिणामक स्वभाव को बराबर समझ ले तो मिथ्याज्ञान न रहे। इस एक शक्ति में स्व-पर प्रकाशक ज्ञान और प्रमेयत्व—दोनों की सिद्धि हो जाती है।

—यहाँ पन्द्रहवीं परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति का वर्णन पूरा हुआ।

आचार्यदेव, अप्रतिबुद्ध जीव को

आत्मा का स्वरूप बतलाते हैं

हे भाई! हमने तुझे जड़ से भिन्न तेरा चैतन्यतत्त्व बतलाया, उसे जानकर अब तु प्रसन्न हो... सावधान हो... और चैतन्यस्वरूप आत्मा का ही स्वद्रव्यरूप से अनुभव कर।

[१]

जिसे देह से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा की खबर नहीं है और अज्ञानभाव से 'शरीर ही मैं हूँ, शरीर के कार्य मुझसे होते हैं'—ऐसा जो मान रहा है, ऐसे मूढ़ जीव को आचार्यदेव करुणापूर्वक समझाते हैं कि—अरे मूढ़! तेरा आत्मा सदैव चैतन्यस्वरूप है, वह चैतन्यस्वरूप आत्मा जड़ कहाँ से हो गया? जो तू जड़ को अपना मानता है? तेरा आत्मा तो सदैव चैतन्यस्वरूप ही है, वह कभी जड़रूप नहीं हुआ है; चैतन्यस्वरूप आत्मा का कभी जड़ के साथ एकत्व नहीं हुआ है, सदैव भिन्नत्व ही है; इसलिये हे भाई! अब तू जड़ के साथ एकत्व की मान्यता छोड़ और अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा को देख। तेरे आत्मा का विलास जड़ से भिन्न चैतन्यस्वरूप है, ऐसे चैतन्यविलास से एक आत्मा को ही स्वतत्त्वरूप से देख।

[२]

यह बात किसे समझाते हैं?—जो अनादि से धर्म का बिलकुल अनभिज्ञ है, जिसे शरीर से भिन्न आत्मतत्त्व की खबर नहीं है—ऐसे अज्ञानी को यह बात समझाते हैं। वह जीव अज्ञानी होने पर भी आत्मा का स्वरूप समझने का कामी है—जिज्ञासु है और विनयपूर्वक यह बात सुनने के लिए खड़ा है, इसलिये वह आत्मा को समझने की पात्रतावाला है, इसलिये आचार्यदेव जिसप्रकार समझायेंगे, उसीप्रकार वह समझ जायेगा।

[३]

भाई रे! अब तू सावधान हो, और अपने चैतन्यस्वरूप को सम्हाल! अभीतक तो अज्ञान के कारण जड़-चेतन की एकता मानकर तूने भव-भ्रमण किया, किन्तु तुझे जड़ से भिन्न तेरा शुद्ध

चैतन्यस्वरूप बतलाते हैं, उसे जानकर तू सावधान हो। सावधान होकर ऐसा जान कि अहो! मैं तो चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ, पूर्वकाल में भी मैं चैतन्यस्वरूप था। जड़ शरीर मुझसे सदैव अत्यन्त भिन्न है; मेरा चैतन्यस्वरूप, जड़ से भिन्न रहा है—ऐसे अपने चैतन्यस्वरूप को जानकर तू प्रसन्न हो... आनंद में आ। अपने चैतन्यस्वरूप को पहिचानते ही तुझे अन्तर में अपूर्व प्रसन्नता और आनंद होगा। 'मैं चैतन्य परमेश्वर हूँ, जैसे परमात्मा हैं, वैसा ही मेरा स्वरूप है, मेरा स्वरूप कुछ बिगड़ा नहीं है'—ऐसा समझकर अपना चित्त उज्ज्वल कर... हृदय को उज्ज्वल कर... प्रसन्न हो और आह्लाद कर कि अहो! ऐसा मेरा आनन्दघन चैतन्यभावस्वरूप! भाई! ऐसा अनुभव करने से तेरा अनादि का मिथ्यात्व दूर हो जायेगा और भवभ्रमण का अन्त आ जायेगा।

[४]

आत्मा नित्य चैतन्यस्वरूप है और रागादि भाव तो अनित्य बन्धस्वरूप हैं। हे भाई! तेरे आत्मा को बन्धन की उपाधि की अति निकटता होने पर भी, बंध के साथ एकमेकता नहीं है; रागादि भाव तेरे चैतन्यस्वरूप भावरूप नहीं हो गये हैं। ज्ञान को और राग को ज्ञेय-ज्ञायकपना है, और एकक्षेत्रावगाहपना है, किन्तु उनके एकत्व नहीं है; ज्ञान और राग का स्वभाव भिन्न-भिन्न है। ऐसा होने पर भी जो जीव, ज्ञान और राग को एकमेकरूप मान रहा है, उससे आचार्यदेव कहते हैं कि अरे दुरात्मा! हाथी इत्यादि पशु जैसे स्वभाव को तू छोड़-छोड़! जिसप्रकार हाथी लड्डू और घास के स्वाद का विवेक किये बिना उन दोनों को एकमेक करके खाता है, उसीप्रकार तू भी जड़ और चेतन का विवेक किए बिना दोनों का एकरूप अनुभव करता है,—उसे अब तू छोड़, और परम विवेक से भेदज्ञान करके अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा को जड़ से और विकार से अत्यन्त भिन्न जान! यहाँ 'हे दुरात्मा!'—ऐसा कहा, उसका अर्थ यह है कि : अरे भाई! चैतन्यस्वरूप से च्युत होकर जड़ स्वरूप को अपना माननेरूप जो मिथ्यात्वभाव है, वह दुरात्मपना है; उसे तू छोड़, और 'मैं चैतन्यस्वरूप सदैव उपयोगमय आत्मा हूँ'—ऐसा समझकर तू पवित्रात्मा बन।—इसप्रकार दुरात्मपना छोड़कर पवित्रात्मपना प्रगट करने की प्रेरणा की है।

[५]

श्री सर्वज्ञ भगवान की साक्षी देकर आचार्यदेव कहते हैं कि—अरे जीव! सर्वज्ञभगवान ने तो जीव को नित्य उपयोग स्वभावरूप देखा है। सुननेवाला शिष्य व्यवहार से तो सर्वज्ञभगवान को

माननेवाला है; इसलिये आचार्यदेव, सर्वज्ञ की साक्षी देकर समझाते हैं कि—हे भाई! अपने सर्वज्ञभगवान समस्त विश्व को प्रत्यक्ष जाननेवाले हैं, उन सर्वज्ञभगवान के ज्ञान से तो ऐसा प्रसिद्ध किया गया है कि जीवद्रव्य सदैव उपयोगमय है, और शरीरादिक तो अचेतन हैं। यदि तू ऐसा कहता है कि—'शरीरादि पुद्गलद्रव्य मेरे हैं'—तो हे भाई! सर्वज्ञभगवान ने सदैव चेतनरूप देखा है, ऐसा जीवद्रव्य, अचेतन कहाँ से गया कि जिससे तू पुद्गलद्रव्य को अपना मानता है? जिसप्रकार प्रकाश और अंधकार में एकता नहीं है, किन्तु अत्यन्त भिन्नता है; उसीप्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा और जड़ में एकता नहीं है, किन्तु अत्यन्त भिन्नत्व है। जिसप्रकार जड़ के साथ एकता नहीं है, उसीप्रकार रागादिक के साथ भी चैतन्यस्वरूप की एकता नहीं है; चैतन्यस्वरूप तो राग से भी भिन्न है। चैतन्य और राग की एकमेकता नहीं हुई है। इसलिये हे शिष्य! तू अपने आत्मा को शरीर और राग से भिन्न चैतन्यस्वरूप जान, चैतन्यस्वरूप आत्मा एक ही तेरा स्वद्रव्य है—ऐसा तू अनुभव कर।

जिनका ज्ञान सर्वप्रकार से शुद्ध है, ऐसे सर्वज्ञभगवान ने अपने दिव्यज्ञान में ऐसा देखा है कि आत्मा सदैव उपयोगस्वरूप है। जो जीव इससे विपरीत मानता हो, उसने वास्तव में सर्वज्ञभगवान को नहीं पहिचाना है। यदि सर्वज्ञभगवान के ज्ञान का निर्णय करे तो, आत्मा सदैव उपयोगस्वरूप है—ऐसा निर्णय भी होता ही रहे। सर्वज्ञभगवान के आत्मा में परिपूर्ण ज्ञान है और राग किंचित् भी नहीं है—इसलिये उसका निर्णय करने से ज्ञान और राग की भिन्नता का निर्णय होता ही जाता है। इसप्रकार हे भाई! तेरे चैतन्यस्वरूप आत्मा को राग से भी भिन्नता है, तब फिर शरीरादि मूर्तद्रव्यों के साथ एकता तो कहाँ से हो सकती है? इसलिये उस एकत्व की भ्रमणा छोड़कर 'मैं चैतन्य ही हूँ' —ऐसा तू अनुभव कर।

[६]

जिस प्रकार पिता दो हिस्से करके पुत्र को समझाता है कि देख भाई! यह तेरा हिस्सा; अपना भाग लेकर तू संतुष्ट हो; उसी प्रकार यहाँ जीवद्रव्य और पुद्गलद्रव्य दो हिस्से करके आचार्यदेव समझाते हैं कि देख भाई! चैतन्यद्रव्य नित्य उपयोग-स्वभावरूप है, वह तेरा हिस्सा है, और 'नित्य उपयोगस्वभाव' के अतिरिक्त अन्य पुद्गलद्रव्य का हिस्सा है; हे जीव! अब तू अपना हिस्सा ले ले और सन्तुष्ट हो। उपयोग स्वभाव-ज्ञायकभाव के अतिरिक्त अन्य सबमें से आत्मबुद्धि छोड़कर इस एक ज्ञायकभाव का ही अपने स्वभावरूप अनुभव कर.. उसी में एकाग्र हो।

[७]

जिस प्रकार नमक में से पानी हो जाता है और पानी से नमक हो जाता है, उसी प्रकार जीव कभी पुद्गलरूप नहीं होता और पुद्गल कभी जीवरूप नहीं होता। इसलिये नमक के पानी की भाँति जीव-अजीव की एकता नहीं है, किन्तु प्रकाश और अन्धकार की भाँति जीव-अजीव की भिन्नता है। जीव तो चैतन्य प्रकाशमय है और पुद्गल तो जड़-अंध है; उनके अत्यन्त भिन्नता है। यहाँ 'नमक का पानी'—ऐसा दृष्टान्त देकर आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! जिस प्रकार नमक गलकर पानीरूप हो जाता है; उसी प्रकार तेरी परिणति अजीव को अपना मानकर उस ओर उन्मुख होने पर भी, उस अजीव के साथ तो एकाकार—एकमेक नहीं हो सकती, इसलिये उस अजीव से अपनी परिणति को अन्तर में उपयोगस्वरूप जीवद्रव्य की ओर उन्मुख करे तो वहाँ वह एकाकार होती है; इसलिये वही तेरा स्वरूप है—ऐसा तू जान। तेरी परिणति पर के साथ तो एकरूप नहीं हो सकती, तेरे उपयोगस्वरूप जीवद्रव्य में ही वह एकाकार होती है, इसलिये 'यह उपयोगस्वरूप जीवद्रव्य ही मैं हूँ'—इस प्रकार एक उपयोगस्वरूप जीवद्रव्य का ही स्वद्रव्यरूप अनुभव करके उसी में अपनी परिणति को एकाकार कर और परद्रव्य को अपना माननेरूप मोह को अब तो तू छोड़ रे छोड़!

[८]

देह, सो मैं हूँ, देह की क्रिया मेरी है,—ऐसा जो अज्ञानी मानता है, उससे आचार्यदेव कहते हैं कि अरे मूढ़! जीव तो उपयोगस्वरूप है और शरीरादि पुद्गल तो जड़स्वरूप हैं; उपयोगस्वरूप जीव और जड़स्वरूप पुद्गल का एकत्व कभी नहीं हो सकता। तू कहता है कि चैतन्यमय जीव 'मैं' हूँ और शरीरादि अजीव भी 'मैं' हूँ—इस प्रकार चैतन्य और जड़ दोनों द्रव्यरूप से तू अपने को मानता है। किन्तु भाई रे! तू एक, जीव और अजीव—ऐसे दोनों द्रव्यों में किसप्रकार रह सकता है? तू तो सदैव अपने उपयोगस्वरूप में विद्यमान है; पुद्गल तो जड़ है, उसमें तू विद्यमान नहीं है। इसलिये अकेले चैतन्यमय स्वद्रव्य का तू अपनेरूप अनुभव कर, उसीमें 'मैं' पने की दृढ़ प्रतीत कर और उससे भिन्न अन्य समस्त पदार्थों में से मैं-पना छोड़ दे।

[९]

'अहो'! मैं तो एक चैतन्यमय जीवतत्त्व; मैं अजीव में कैसे व्याप्त हो सकता हूँ? मैं तो

अपने उपयोगस्वरूप में ही हूँ और पर तो पर में ही है, मैं कभी अपने उपयोगस्वरूप को छोड़कर पररूप हुआ ही नहीं हूँ,'—ऐसा श्रीगुरु ने तुझे समझाया, इसलिये 'हे भव्य! मैं स्वयं अपने उपयोगस्वभाव में ही हूँ'—ऐसा जानकर, प्रसन्न होकर सावधान हो, और अन्तर्मुख होकर ऐसे अपने चैतन्यस्वरूप का अनुभव कर, उसके अतीन्द्रिय आनंद का उपभोग कर। हमने तो तुझे तेरा चैतन्यस्वरूप, देहादि सर्व से पृथक् और स्वयं तुझ से ही परिपूर्ण सदा उपयोगमय बतलाया, उसे जानकर तू प्रसन्न हो, सावधान हो और उसका अनुभव कर, उसमें तुझे आत्मा के अपूर्व आनन्द का स्वसंवेदन होगा।

❀ ❀ ❀

—इसप्रकार आचार्यदेव ने चैतन्यस्वरूप में प्रसन्नता, सावधानी और अनुभव करने को कहा।

श्रीगुरु के ऐसे कल्याणकारी उपदेश को झेलनेवाला शिष्य विनय और बहुमानपूर्वक कहता है कि—हे प्रभो! अनादिकाल से मैं अपने भिन्न चैतन्यतत्त्व को भूलकर विकार और पर में अपनत्व मानकर कर्तृत्व बुद्धिरूप मूर्खता से मैं आकुल-व्याकुल हो रहा था, अब आपने ही परम करुणा करके बारम्बार मुझे प्रतिबोध दिया और पर से अत्यन्त भिन्न चैतन्यस्वरूप से परिपूर्ण मेरा स्वद्रव्य समझाकर मुझे निहाल किया। अहो, ऐसा परम महिमावन्त, अपना स्वद्रव्य समझने से मुझे प्रसन्नता होती है, पर में एकाकार हुई एकत्वबुद्धि दूर होकर, अब चैतन्यस्वरूप में सावधानी होती है, मेरा उत्साह निजस्वरूप की ओर ढलता है और मैं अपना नित्यउपयोगस्वरूप से अतीन्द्रिय-ज्ञानानंदस्वभाव का अनुभव करता हूँ। अब, रागादि भाव या परद्रव्य मेरे स्वरूप में एकमेकरूप से किंचित् भासित नहीं होते। अहो नाथ! आपने दिव्य मंत्रों द्वारा हमारी मोहमूर्च्छा दूर करके हमें सजीवन किया.....

—इसप्रकार, समझनेवाला शिष्य अत्यन्त विनय और बहुमानपूर्वक श्रीगुरु के उपकार की घोषणा करता है।

❀ ❀ ❀

आचार्यदेव ने अनेकानेक प्रकार से जीव-अजीव का भिन्नत्व बतलाया, और अजीव से भिन्न शुद्धचैतन्यस्वरूप आत्मा की समझ देकर, प्रसन्नतापूर्वक सावधानी से उसका अनुभव करने को कहा; कोई जीव इतने से भी जागृत न हो तो उसे अति उग्र प्रेरणा करके आचार्यदेव २३ वें

कलश में कहते हैं कि—अरे भाई! तू मरकर भी चैतन्यमूर्ति आत्मा का अनुभव कर। आचार्यदेव कोमल सम्बोधन से कहते हैं कि हे भाई! शरीरादिक मूर्तद्रव्यों से भिन्न ऐसे अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा का तू किसी भी प्रकार महाप्रयत्न करके अनुभव कर—जिससे पर के साथ एकत्व का तेरा मोह छूट जाये।

[—आत्मा का अनुभवन करने की प्रेरणावाला इस २३ वें कलश का प्रवचन अगले अंकों में पढ़ें। उसका शीर्षक होगा।—''आत्मकल्याण की अद्‌भुत प्रेरणा'' आत्मकल्याण के लिये आतुर जिज्ञासुओं को वह लेख पढ़ने से ऐसा लगेगा कि अहो! आत्मकल्याण की ऐसी वात्सल्यपूर्ण अद्‌भुत प्रेरणा महा उपकारी संतों के अतिरिक्त दूसरा कौन दे सकता है?]

महान तत्त्वार्थ ग्रंथ छपकर तैयार हो रहा है

मोक्षशास्त्र-सूत्रजी-सटीक

जिसमें सर्वज्ञ-वीतराग कथित तत्त्वार्थों के निरूपण को सुगम स्पष्ट शैली से प्रकाश में लाने का विवेचन और नय-प्रमाण तथा शास्त्राधार सहित तात्त्विक विषयों का विस्तृत समाधान होने से यह ग्रंथ सर्व जिज्ञासुओं को पढ़ने योग्य है।

पृ० सं० ९०० करीब, मूल्य लागत मात्र होगा।

जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ : सौराष्ट्र

आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त होता है ?

प्रवचनसार के परिशिष्ट में ४७ नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन किया है, उस पर पूज्य गुरुदेव के विशिष्ट अपूर्व प्रवचन का सार

लेखांक १६] [अंक १११ से आगे

★ 'प्रभो ! यह आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त किया जाता है ?'—ऐसा जिज्ञासु शिष्य पूछता है।

★ उसके उत्तर में श्री आचार्यदेव कहते हैं कि 'आत्मा अनंत धर्मोंवाला एक द्रव्य है और अनंतनयात्मक श्रुतज्ञान प्रमाण पूर्वक स्वानुभव द्वारा वह ज्ञात होता है।

★ उस आत्मद्रव्य का ४७ नयों से वर्णन किया है, उसमें से २५ नयों पर के प्रवचन अभीतक आ गये हैं; उसके आगे यहाँ दिये जा रहे हैं।

(२६) नियतिनय से आत्मा का वर्णन

अनंतधर्मवाला चैतन्यमूर्ति आत्मा प्रमाणज्ञान से ज्ञात होता है; उसका २५ नयों से अनेक प्रकार से वर्णन किया है। अब, नियति, स्वभाव, काल, पुरुषार्थ और दैव—इन पाँच बोलों का वर्णन करते हैं; उनमें प्रथम नियतिनय से आत्मा कैसा है, वह कहते हैं।

आत्मद्रव्य नियतनय से नियतस्वभावरूप भासित होता है; जिसप्रकार उष्णता, वह अग्नि का नियत स्वभाव है, उसीप्रकार नियतिनय से आत्मा भी अपने नियतस्वभाववाला भासित होता है। आत्मा के त्रिकाल एकरूप स्वभाव को यहाँ नियतस्वभाव कहा है; उस स्वभाव को देखनेवाले नियतनय से जब देखो, तब आत्मा अपने चैतन्यस्वभावरूप से एकरूप भासित होता है। पर्याय में कभी तीव्रराग, कभी मंदराग और कभी रागरहितपना, और कभी राग बदलकर द्वेष, कभी मतिज्ञान और कभी केवलज्ञान, एक क्षण मनुष्य और दूसरे क्षण देव—इस तरह अनेक प्रकार होते हैं;—उनका वर्णन आगे आनेवाले बोल में आत्मा के अनियत स्वभावरूप से करेंगे। यहाँ आत्मा के नियत स्वभाव की बात है। जैसा शुद्ध चैतन्य ज्ञानानंदस्वभाव है, वैसे ही नियतस्वभावरूप से

आत्मा सदैव प्रतिभासित होता है; पर्याय अल्प हो या अधिक हो, विकारी हो या निर्मल हो, परन्तु नियतस्वभाव से तो आत्मा सदैव एकरूप है। ऐसे नियतस्वभाव को जो देखता है, उसे अकेली पर्यायबुद्धि नहीं रहेगी किन्तु द्रव्यस्वभाव का अवलम्बन होगा। पर्यायबुद्धिवाला जीव आत्मा को एकरूप नियतस्वभाव से नहीं देख सकता और न उसके नियतनय होता है।

यहाँ द्रव्य के त्रिकाल स्वभाव को ही नियत कहा है; जिसप्रकार उष्णता, वह अग्नि का नियतस्वभाव है, अग्नि सदैव उष्ण ही होती है; ऐसा कभी नहीं हो सकता कि अग्नि उष्णतारहित हो। उसीप्रकार चैतन्यपना आत्मा का नियत स्वभाव है; उस स्वभाव से जब देखो, तब आत्मा एकरूप चैतन्यस्वरूपमय ज्ञात होता है। यद्यपि पर्याय में भी नियतपना अर्थात् क्रमबद्धपना है; जिस समय जिस पर्याय का होना नियत है, वही होती है; उसके क्रम में परिवर्तन नहीं होता—ऐसा पर्याय का नियत स्वभाव है; परन्तु इससमय यहाँ उसकी बात नहीं है; यहाँ तो निमित्त की अपेक्षारहित आत्मा का जो त्रिकाल एकरूप रहनेवाला स्वाभाविक धर्म है, उसका नाम नियतस्वभाव है और वह नियतनय का विषय है।

जिसप्रकार अग्नि का उष्णस्वभाव है, वह नियत ही है,—निश्चित ही है; अग्नि सदैव उष्ण ही होती है। उसीप्रकार आत्मा का चैतन्यस्वभाव नियत-निश्चित-सदैव एकरूप है; नियतस्वभाव से आत्मा अनादि-अनंत एकरूप नियत परमपारिणामिकस्वभावरूप ही भासित होता है; बंध-मोक्ष के भेद भी उसमें दिखाई नहीं देते। बंध और मोक्ष की पर्यायें नियत अर्थात् स्थायी एकरूप नहीं हैं परन्तु अनियत हैं। उदय-उपशम-क्षयोपशम या क्षायिक—यह चारों भाव भी अनियत हैं; परमपारिणामिकस्वभाव ही नियत है। आत्मा का सहज निरपेक्ष शुद्ध स्वभाव ही नियत है। नियतनय आत्मा को सदैव ज्ञायकस्वभावरूप ही देखता है। आत्मा का ज्ञायकस्वभाव है, वह नियत-निश्चित हुआ अनादि-अनंत स्वभाव है; उसमें कभी परिवर्तन नहीं हो सकता। आत्मा के ऐसे स्वभाव को जाननेवाला जीव, पर्याय के अनेक प्रकारों को भी जानता है, तथापि उसे पर्यायबुद्धि नहीं होती। आत्मा के नियत एकरूप ध्रुवस्वभाव को जानने से उसी का आश्रय होता है; इसके अतिरिक्त किसी निमित्त, विकल्प या पर्याय के आश्रय की मान्यता नहीं रहती। इसप्रकार प्रत्येक नय से शुद्ध आत्मा की ही साधना होती है। जो जीव अंतरंग में शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा को नहीं देखता, उसके एक भी नय सच्चा नहीं होता।

जैसे कोई कहे कि—ऐसा नियम बनाओ जिसमें कभी परिवर्तन न हो। उसीप्रकार यह

नियतनय आत्मा के स्वभाव का ऐसा नियम बाँधता है कि जो कभी पलट न सके, आत्मा का नियम क्या है ?—कि अपने शुद्ध ज्ञानानंदस्वभाव से त्रिकाल रहना ही उसका नियम है; अपने ज्ञानानन्द स्वभाव को वह कभी नहीं छोड़ता। जो आत्मस्वभाव के ऐसे नियम को जानता है, वह नियम से मुक्ति प्राप्त करता है।

देखो, यह आत्मस्वभाव के गीत! संतों के अंतर अनुभव में से यह झन्कार उठी है कि अरे जीव! तूने अपने नियत परमानन्दस्वभाव को कभी छोड़ा नहीं है; तेरा सहज ज्ञान और आनंद स्वभाव तुझमें नियत है; तू सदैव अनाकुल शांत रस का कुण्ड है; यदि अग्नि कभी अपनी उष्णता को छोड़ दे तो भगवान आत्मा अपने पवित्र चैतन्यस्वभाव को छोड़े! परन्तु ऐसा कभी नहीं होता। केवलज्ञान और परम आनन्द प्रगट होने के सामर्थ्य से सदैव परिपूर्ण ऐसा तेरा नियत स्वभाव है; उस स्वभाव के अवलम्बन से ही धर्म प्रगट होता है; इसके अतिरिक्त कहीं बाह्य से धर्म नहीं आता। एक बार अंतर में अपने ऐसे नियत स्वभाव को देख!

नियतनय से देखने पर पवित्रता का पिण्ड आत्मा स्वयं चैतन्यस्वभाव से नियत ज्ञात होता है—ऐसा उसका धर्म है। यह धर्म आत्मा को सदैव अपने परम शुद्ध अमृत रस में डुबा रखता है; अपने शांत उपशमरस में स्थिर-नियत रखता है। नरक में या स्वर्ग में; अज्ञानदशा के समय या साधकदशा के समय, निगोद में था तब या सिद्धदशा में होगा तब—कभी भी वह अपने स्वभाव को बदलकर अन्यरूप नहीं हो जाता—ऐसा आत्मा का नियतस्वभाव है। जो ऐसे नियतस्वभाव को जाने, उसके पर्याय में भी ऐसा ही नियत होता है कि अल्पकाल में मुक्ति प्राप्त करे।

एक ओर देखने से अनुकूलता में राग और फिर वह बदलकर प्रतिकूलता में द्वेष—इसप्रकार आत्मा अनियत-स्वभाव से लक्ष में आता है; और दूसरी आरे से देखने पर तीनलोक की चाहे जैसी प्रतिकूलता आ पड़े, तथापि आत्मा कभी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता—ऐसा उसका नियत स्वभाव है।—इसप्रकार दोनों स्वभावों से जो आत्मा को जानता है, उसे ध्रुव एकरूप स्वभाव की महिमा आकर उसमें अंतरोन्मुख हुए बिना नहीं रहेगी।

जिसप्रकार, अग्नि में उष्णता न हो—ऐसा कभी नहीं हो सकता; उसीप्रकार आत्मा का ज्ञानानंदस्वभाव अनादि-अनंत एकरूप है, उसका नाम नियतस्वभाव है। अग्नि का स्वभाव ऐसा नियत है कि उसमें उष्णता होती ही है; उसीप्रकार आत्मा में ऐसा नियत धर्म है कि अपने शुद्धचैतन्यस्वभाव से वह कभी पृथक् नहीं होता। आत्मा का त्रिकाली स्वभाव अनंत सहजानंद की

मूर्ति है; उस स्वभाव को देखनेवाले ज्ञानी जीव ऐसा नहीं मानते कि, किन्हीं अनुकूल निमित्तों से मेरा स्वभाव नवीन उत्पन्न होता है अथवा प्रतिकूल निमित्तों से मेरा स्वभाव नष्ट हो जाता है या उसमें परिवर्तन हो जाता है। इसलिये उन ज्ञानियों को चाहे जैसे अनुकूल-प्रतिकूल प्रसंगों में भी अनंतानुबंधी राग-द्वेष होते ही नहीं। वे जानते हैं कि हमारा आत्मा त्रिकाल चैतन्य ज्ञायकरूप से नियत है; हमें अपने ज्ञायकस्वभाव से छुड़ाने की किन्हीं संयोगों की तो शक्ति नहीं है, और पर्याय के क्षणिक विकार में भी ऐसी शक्ति नहीं है कि हमें अपने स्वभाव से पृथक् कर दे। जिसप्रकार लोग नियम लेते हैं कि हम अमुक वस्तु नहीं खाएँगे; उसीप्रकार आत्मा नियतस्वभाव का ऐसा नियम है कि तीनकाल में कभी भी अपने चैतन्यस्वभाव को छोड़कर विभावरूप नहीं होना। जो घड़ी-घड़ी में बदले, उसे नियम नहीं कहा जाता।

देखो, यह कहे की बात चल रही है ? यह भगवान आत्मा के गीत गाए जा रहे हैं; आत्मा में जो धर्म हैं, उनकी यह महिमा गायी जा रही है। अज्ञानी को अनादिकाल से अपने स्वभाव की महिमा नहीं रुचती और वह पर की महिमा करता है। जहाँ उच्चप्रकार के हीरे-जवाहिरात या आभूषणों की महिमा सुनता है, वहाँ उनकी महिमा आ जाती है; परन्तु आत्मा स्वयं तीनलोक का प्रकाशक चैतन्य हीरा है, उसके स्वभाव की महिमा गायी जा रही है, उसे सुनने में अज्ञानी को रुचि या उत्साह नहीं आता। यहाँ तो जिसे आत्मा का स्वभाव समझने की जिज्ञासा जागृत हुई है, उसे आचार्यदेव समझाते हैं। आत्मा का शुद्धस्वभाव त्रिकाल नियमित है; उसी के आधार से पर्याय में शुद्धता प्रगट होती है; इसके अतिरिक्त कहीं बाह्य में से, विकार में से या क्षणिक पर्याय में से शुद्ध पर्याय नहीं आती। भगवान आत्मा ने अपनी पवित्रता के पिण्ड को कभी छोड़ा नहीं है, पर्याय में जो शुद्धता प्रगट होती है, वह तो पहले नहीं थी और नवीन प्रगट हुई, इसलिये वह अनियत है; और शुद्ध स्वभाव ध्रुवरूप से सदैव ऐसे का ऐसा ही है; इसलिए वह नियत है। पर्याय जिससमय जो होना हो, वही होती है;—इसप्रकार से पर्याय का जो नियत है, उसकी इस नियतनय में बात नहीं है परन्तु यहाँ तो द्रव्य के नियतस्वभाव की बात है; क्योंकि नियत के समक्ष फिर अनियतस्वभाव का भी कथन करेंगे; उसमें पर्याय की बात लेंगे। पर्यायों के नियतपने की (क्रमबद्धपर्याय की) जो बात है, उसमें नियत और अनियत ऐसे दो प्रकार नहीं हैं; उसमें तो नियत का एक ही प्रकार है कि समस्त पर्यायें नियत ही हैं—कोई भी पर्याय अनियत नहीं है। परन्तु इससमय तो आत्मवस्तु में नियतस्वभाव और अनियतस्वभाव—ऐसे दोनों धर्म उतारना है; इसलिये यहाँ नियत अर्थात् द्रव्य का एकरूप स्वभाव;

पर्याय का क्रम नियत है परन्तु पर्यायस्वभाव त्रिकाल एकसमान रहनेवाला नहीं है; इसलिये उसे यहाँ अनियत स्वभाव कहा है। जब पर्याय का नियतपना (—क्रमबद्धपना) कहना हो, उससमय तो विकार भी नियत कहा जाता है; ज्ञान नियत है, ज्ञेय नियत हैं, विकार नियत है, संयोग और निमित्त भी नियत हैं, जो हों वही होते हैं, अन्य नहीं होते; जिससमय जो होना है, वह सब नियत ही है। ऐसे नियत के निर्णय में भी ज्ञानस्वभाव की ही दृष्टि हो जाती है, और वस्तु का नियत-अनियत स्वभाव कहा, उसके निर्णय में भी ध्रुवस्वभाव की दृष्टि हो जाती है। द्रव्य के नियतस्वभाव को जानने पर राग को अनियत धर्मरूप से जानता है, इसलिये उस राग में स्वभावबुद्धि नहीं होती; इसप्रकार आत्मा के नियत स्वभाव को जानने पर राग से भेदज्ञान हो जाता है।

राग होता है, वह आत्मा का अनियतस्वभाव है—ऐसा जाने, अथवा राग को उससमय की पर्याय के नियतरूप से जाने, तो भी उन दोनों में, ''आत्मा का नियतस्वभाव उस राग से भिन्न है'' ऐसा भेदज्ञान होकर स्वभावदृष्टि होती है।

जो जीव त्रिकाली द्रव्य के नियतस्वभाव को जाने, वही जीव त्रिकाल की पर्यायों के नियतपने को यथार्थ जानता है, और क्षणिक भावों के अनियतपने को भी वही जानता है। पर्याय में राग हुआ, वह आत्मा का अपना अनियतधर्म है, इसलिये कर्म के उदय के कारण राग हुआ, यह बात नहीं रहती। आत्मा का स्थायी स्वभाव, वह नियत है और क्षणिक भाव, वह अनियत है। पूर्व अनादिकाल में आत्मा नरक-निगोद आदि चाहे जिस पर्याय में रहा, तथापि आत्मा के नियतधर्म को उसने अपने शुद्धस्वभाव से एकरूप बना रखा है; जहाँ-जहाँ परिभ्रमण किया, वहाँ सर्वत्र अपने शुद्ध चैतन्यस्वभाव को अपने साथ रखकर भटका है। यदि ऐसे अंतरस्वभाव का ज्ञान करे तो वर्तमान में अपूर्व धर्म होता है।

नियतनय का विषय त्रिकाल एकरूप रहनेवाला द्रव्य है और अनियतनय का विषय पर्याय है। ''अनियत'' का अर्थ अक्रमबद्ध-अनिश्चित् अथवा उल्टी-सीधी पर्याय—ऐसा नहीं समझना; परन्तु पर्याय, वह आत्मा का त्रिकाल एकरूप रहनेवाला स्वभाव नहीं है किन्तु वह पलट जाता है, उस अपेक्षा से उसे अनियत धर्म समझना। पर्याय तो त्रिकाल के प्रत्येक समय की जैसी है, वैसी नियत है; उसमें कुछ उल्टा-सीधा नहीं हो सकता। बस! तू अपने ज्ञान की प्रतीति करके उसका ज्ञाता रह जा। शरीरादि मेरे हैं—यह बात भूल जा, और राग को बदलूँ—यह बात भी भूल जा; शरीरादि और रागादि—सबको जाननेवाला तेरा ज्ञानस्वभाव है, उसे सँभाल; वह तेरा नियतस्वभाव है। अपने नियतस्वभाव को तूने कभी छोड़ा नहीं है।

आत्मा त्रिकाल ज्ञानस्वभाव है—इसप्रकार द्रव्य के नियतस्वभाव का निर्णय करे तो वह स्वभावदृष्टि से रागादि का ज्ञाता हो गया।

द्रव्य के नियतस्वभाव को जानने पर, राग को पर्याय के नियतरूप से जाने तो उसमें भी राग का ज्ञाता हो गया।

राग, आत्मा का अनियत स्वभाव है अर्थात् वह आत्मा का त्रिकाल स्थायी स्वभाव नहीं है—ऐसा जाने तो उसमें भी राग और स्वभाव का भेदज्ञान होकर राग का ज्ञाता रह गया।

—इसप्रकार चाहे जिस रीति से समझे परन्तु उसमें ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता करना ही आता है और वही धर्म है।

''नियतवाद'' का बहाना लेकर अज्ञानी लोग अनेक प्रकार की अंधा-धुँधी चलाते हैं। सर्वज्ञदेव ने जैसा देखा है, उसीप्रकार नियम से होता है—इसप्रकार सर्वज्ञ की श्रद्धापूर्वक के सम्यक् नियतवाद को भी अज्ञानी, गृहीतमिथ्यात्व कहते हैं; परन्तु उसमें ज्ञानस्वभाव के निर्णय का महान पुरुषार्थ आता है, उसकी उन्हें खबर नहीं है। तथा दूसरे स्वच्छन्दी जीव, सर्वज्ञ के निर्णय के पुरुषार्थ को स्वीकार किए बिना अकेला नियत का नाम लेकर पुरुषार्थ को उड़ाते हैं, उन्हें भी नियतस्वभाव की खबर नहीं है।

गोम्मटसार में नियतवादी को गृहीत मिथ्यादृष्टि कहा है। वह जीव तो ज्ञानस्वभाव की प्रतीति का सम्यक् पुरुषार्थ नहीं करता, सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं करता; परन्तु विकार का और पर का स्वामी होकर कहता है कि ''जो नियत होगा, वह होगा।'' परन्तु ''जो नियत रहेगा, वह होगा''—ऐसा जाना किसने? उसका निर्णय कहाँ किया?—अपने ज्ञान में। तो तुझे अपने ज्ञान की प्रतीति है? ज्ञान की बड़ाई और महिमा को जानकर, उसके सन्मुख होकर, ज्ञेयों के नियत को जो जानता है, वह तो मोक्षमार्गी साधक हो गया है, उसकी गोम्मटसार में बात नहीं है, परन्तु जो मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानस्वभाव के सन्मुख हुए बिना और सर्वज्ञ की श्रद्धा किए बिना मात्र परसन्मुख देखकर नियत मानता है, वह मिथ्या नियतवादी है और उसी को गोम्मटसार में गृहीतमिथ्यादृष्टि कहा है।

सर्वज्ञस्वभाव की श्रद्धापूर्वक अपने ज्ञानस्वभाव के सन्मुख होकर ऐसा निर्णय किया कि अहो! सब नियत है; जिससमय जैसा होना है, वैसा ही क्रमबद्ध होता है; मैं तो स्व-पर प्रकाशी ज्ञाता हूँ—ऐसा निर्णय, वह सम्यग्दृष्टि का सम्यक् नियतवाद है। इस नियत में द्रव्य-पर्याय सबका समावेश हो जाता है; अज्ञानी का नियतवाद ऐसा नहीं होता। जिसने अपने ज्ञानस्वभाव के सन्मुख

होकर उसकी रुचि का सम्यक् पुरुषार्थ प्रगट किया और शुभ-अशुभ भावों की रुचि छोड़ दी है, उसी ने वास्तव में सम्यक् नियतवाद को माना है; उसमें चैतन्य का पुरुषार्थ है, मोक्ष का मार्ग है। उसका वर्णन स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की ३२१-३२२ वीं गाथा में है; सम्यग्दृष्टि जीव, वस्तु के यथार्थ स्वरूप का कैसा चिंतवन करना है, वह उसमें बतलाया है।

यहाँ प्रवचनसार में जो नियतधर्म कहा है, वह तीसरी बात है। यहाँ तो आत्मा का जो त्रिकाल एकरूप शुद्ध निरपेक्ष चैतन्यस्वभाव है, उसका नाम नियत धर्म है। स्वभाववान कभी अपने मूल स्वभाव को नहीं छोड़ता—ऐसा उसका नियतधर्म है। यह नियतधर्म तो ज्ञानी-अज्ञानी सभी जीवों में है; परन्तु ज्ञानी ही उसे नियतनय द्वारा जानते हैं। नियतधर्म सभी आत्माओं में है, परन्तु नियतनय सभी आत्माओं के नहीं होता; जो ज्ञानी, आत्मा के नियतस्वभाव को जाने, उसी के नियतनय होता है।

इस प्रकार नियतनय के तीन प्रकार हुए:—

(१) गोम्मटसार में कहा हुआ ज्ञान की प्रतीतिरहित गृहीतमिथ्यादृष्टि का नियतवाद।

(२) स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा हुआ ज्ञानी का नियतवाद; उसमें सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानस्वभाव की भावनापूर्वक सर्वज्ञदेव के देखे हुए वस्तुस्वरूप का चिंतन करता हुआ, जैसा होता है, वैसा पर्याय के नियत को जानता है; उसमें विषमभाव नहीं होने देता। इसलिये यह ज्ञानी का नियतवाद तो वीतरागता और सर्वज्ञता का कारण है।

(३) इस प्रवचनसार में कहा हुआ नियतस्वभाव; नियतनय से सभी जीव त्रिकाल एकरूप ज्ञानस्वभाव से नियत है।

उपरोक्त तीनप्रकारों में से गोम्मटसार में जिस नियतवाद को गृहीतमिथ्यात्व में गिना है, वह अज्ञानी का है; उसे सर्वज्ञ की श्रद्धा नहीं है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में वर्णित नियतवाद तो सर्वज्ञ की श्रद्धा सहित और ज्ञाता-दृष्टास्वभाव की सन्मुखता के पुरुषार्थसहित ज्ञानी का सम्यक् नियतवाद है; और प्रवचनसार में जिस नियतवाद की बात है, वह समस्त जीवों का त्रिकालिक एकरूप शुद्ध चिदानंदस्वभाव है, उसकी बात है। आत्मा अपने असली चैतन्यस्वभाव को कभी नहीं छोड़ता—ऐसा उसका नियतस्वभाव है। जो जीव ऐसे नियतस्वभाव को जाने, उसे विकार पर बुद्धि नहीं रहती; क्योंकि विकार, आत्मा का त्रिकाल स्वभाव नहीं है; इसलिये इस नियत में उसका स्वीकार नहीं है। इस तीसरे बोल की अपेक्षा से तो विकार आत्मा का "अनियतस्वभाव" है, और दूसरे बोल की अपेक्षा से तो विकार भाव भी "नियत" है, क्योंकि उससमय उसी पर्याय का क्रम नियत है।

विकार होता है, वह आत्मा का त्रिकाली स्वभाव नहीं है; इसलिये अनियतरूप से उसका वर्णन करेंगे; परन्तु उस अनियत का अर्थ ऐसा नहीं है कि उस समय की उस पर्याय के क्रम में भंग पड़ा! आत्मा की पर्याय में कभी विकार होता है और कभी नहीं होता; और न वह सदैव एक-सा रहता है—इसलिये उसे अनियत कहा है; परन्तु पर्याय के क्रम की अपेक्षा से तो वह भी नियत ही है। वस्तुस्वभाव त्रिकाल व्यवस्थित परिणमित हो रहा है; उसकी तीनोंकाल की पर्यायों में इतनी नियमितता है कि उसके क्रम का भंग करने में अनंत तीर्थंकर भी समर्थ नहीं हैं। पर्यायों के ऐसे व्यवस्थितपने का निर्णय करनेवाला जीव स्वयं त्रिकाली द्रव्य के सन्मुख देखकर वह निर्णय करता है, इसलिये वह स्वयं स्वभावोन्मुख और मोक्षपथ में बैठा हुआ साधक हो गया है। क्रमरूप पर्यायें एकसाथ नहीं होती; इसलिये उस क्रम की प्रतीति करनेवाले की दृष्टि अक्रमरूप द्रव्यस्वभाव पर होती है, और उसी में मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ आ जाता है।

धर्मी जीव नियतनय से ऐसा जानता है कि मैंने अपने स्वभाव को सदैव ऐसे का ऐसा नियत बना रखा है; मेरे स्वभाव में कुछ भी न्यूनाधिकता नहीं; विकार के समय मेरे स्वभाव में से कुछ कम नहीं हो जाता और न केवलज्ञान होने से कुछ बढ़ जाता है; पर्याय में विकार हो या निर्विकारीपना हो, परन्तु अपने नियत स्वभाव से तो सदैव एकरूप हूँ। इसप्रकार द्रव्य की अपेक्षा से आत्मा का नियत धर्म है परन्तु उसी के साथ पर्याय अपेक्षा से अनियत धर्म भी विद्यमान है, उसे भी धर्मी जानता है; उसका वर्णन अगले बोल में करेंगे।

❀ ❀ ❀

अग्नि कभी ठण्डी हो और कभी गर्म हो—ऐसे दो प्रकार उसमें नहीं हैं; अग्नि गर्म ही होती है—ऐसा एक नियत प्रकार है। उसीप्रकार नियतनय से आत्मा में भी ऐसा नियत स्वभाव है कि वह सदैव एकरूप शुद्ध चैतन्यस्वरूप ही रहता है। जिसप्रकार अग्नि कभी अपनी उष्णता से पृथक् नहीं होती—ऐसा उसके स्वभाव का नियम है; उसीप्रकार आत्मा के स्वभाव का ऐसा नियम है कि वह अपने शुद्ध चैतन्यत्व से कभी पृथक् नहीं होता।

यहाँ त्रिकाली शुद्धस्वभाव के नियम को नियत कहा है। गोम्मटसार का नियतवादी तो ज्ञान स्वभाव की प्रतीति के पुरुषार्थ से रहित है; इसलिये वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है और द्वादशानुप्रेक्षा में ज्ञानस्वभाव की प्रतीति के पुरुषार्थसहित सम्यग्दृष्टि के सम्यक् नियतवाद का वर्णन है। जिस पदार्थ की जिस समय, जिस प्रकार जिस अवस्था का होना सर्वज्ञदेव के ज्ञान में प्रतिभासित हुआ है, उस पदार्थ की उस समय उसीप्रकार वैसी ही अवस्था नियम से होती है; कोई इन्द्र, नरेन्द्र या जिनेन्द्र भी

उसमें फेरफार नहीं कर सकते—ऐसा वस्तुस्वरूप समझनेवाले सम्यग्दृष्टि को साथ में ऐसी भी प्रतीति है कि मैं ज्ञाता हूँ। इसलिये पर से उदासीन होकर वह उसका ज्ञाता रहा, और अपनी पर्याय का आधार द्रव्य है, उस द्रव्य की ओर उन्मुख हुआ; द्रव्यदृष्टि से उसे क्रमशः पर्याय की शुद्धता होने लगती है।—ऐसा यह सम्यक्नियतवाद है।

देखो, गोम्मटसार में नियतवादी को गृहीत मिथ्यादृष्टि कहा, और यहाँ सम्यग्दृष्टि के नियतवाद को यथार्थ कहा। कहाँ कौन-सी अपेक्षा है, वह गुरुगम से समझना चाहिए।

ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे तहां समजवुं तेह,
त्यां त्यां ते ते आचरे आत्मार्थी जन एह।

कुछ लोग तो 'नियत'—ऐसा शब्द सुनकर ही भड़क उठते हैं; परन्तु भाई! तू जरा समझ तो कि ज्ञानी क्या कहते हैं? 'क्रमबद्ध जैसा होना नियत है, वैसा ही होता है'—ऐसा जानने का बीड़ा किसने उठाया? जिस ज्ञान ने वह बीड़ा उठाया है, वह अपने ज्ञानसामर्थ्य की प्रतीति के बिना वह बीड़ा नहीं उठा सकता; क्रमबद्ध जैसा होना नियत है, वैसा ही होता है—ऐसा बीड़ा उठानेवाले ज्ञान में ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता का पुरुषार्थ—इत्यादि सभी समवाय आ जाते हैं।

(१) यहाँ कहा हुआ नियत धर्म सभी जीवों में है।

(२) द्वादशानुप्रेक्षा में कथित सम्यक्नियतवाद सम्यग्दृष्टि के ही होता है।

(३) गोम्मटसार में कथित मिथ्या नियतवाद गृहीत मिथ्यादृष्टि के ही होता है।

—इसलिये नियत का जहाँ जो प्रकार हो, वह समझना चाहिए; मात्र 'नियत' शब्द सुनकर भड़कना नहीं चाहिए।

'नियत स्वभाव' भी आत्मा का एक धर्म है; और उस धर्म से आत्मा को जानने पर उसके दूसरे अनंत धर्मों की स्वीकृति भी साथ ही आ जाती है। आत्मा में अनंत धर्म एकसाथ ही हैं; उनमें से एक धर्म की यथार्थ प्रतीति करने से दूसरे समस्त धर्मों की प्रतीति भी साथ ही आ जाती है और प्रमाणज्ञान होकर अनंत धर्मों के पिण्डरूप शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा का अनुभव होता है।

पाँच समवाय कारणों में जो भवितव्य अथवा नियति आता है, वह सम्यक् नियतवाद है; उसके साथ दूसरे चारों समवाय आ जाते हैं। न होनेवाला हो जाये—ऐसा कभी होता ही नहीं; जो होता है, वह सब नियत ही है। परन्तु उस नियत के निर्णय में ज्ञाता स्वभाव का 'पुरुषार्थ' है, उस समय जो निर्मल स्वपर्याय प्रगट हुई, वही उस समय का 'काल' है; स्वभाव में जो पर्याय थी, वही

प्रगट हुई है; इसलिये उसमें 'स्वभाव' भी आ गया; और जितने अंश में निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उतने अंश में कर्म का अभाव है—वह 'निमित्त' है।—इसप्रकार एक समय में पाँचों बोल एकसाथ आ जाते हैं। उनमें नियत-अनियतरूप अनेकान्त उतारना हो तो जो भवितव्य है, वह 'नियत' और नियत के अतिरिक्त अन्य चार बोल हैं, वह 'अनियत'—इसप्रकार नियत-अनियतरूप अनेकान्त, वह भगवान का मार्ग है। परन्तु उसमें 'अनियत' शब्द का अर्थ 'आगे-पीछे या अनिश्चित्'—ऐसा नहीं समझना चाहिए; किन्तु आत्मा के नियत धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का नाम 'अनियत' समझना।

सम्यक् नियत में तो विकारी-अविकारी और जड़ की समस्त पर्यायें आती हैं; क्योंकि समस्त पर्यायों का क्रम नियत ही है; और यहाँ कहे हुए नियतस्वभाव में तो अकेला ध्रुवस्वभाव ही आता है; उसमें पर्याय नहीं आती।

पर्याय के नियत का निर्णय भी द्रव्य के निर्णय बिना नहीं किया जा सकता, क्योंकि पर्यायें द्रव्य में से ही आती हैं। निश्चित पर्याय का निर्णय करने में द्रव्यसन्मुखता का अपूर्व पुरुषार्थ है; वह निर्णय करनेवाले को पर्यायबुद्धि नहीं रहती। वर्तमान पर्याय की बुद्धि अंतर्मुख होकर द्रव्य में प्रविष्ट हो जाये, तभी सम्यक् नियत का निर्णय होता है। पर्याय में समय-समय का विकार है, वह मेरे त्रिकाली स्वभाव में नहीं है—इसप्रकार दोनों धर्मों से आत्मा को जाने तो अवस्था विकार की ओर से विमुख होकर चैतन्यस्वभाव की ओर उन्मुख हो जाती है और सम्यग्ज्ञान होता है।

द्रव्य का त्रिकाल नियत स्वभाव है, उसकी दृष्टि करे, या पर्याय के नियत का यथार्थ निर्णय करे, अथवा नियत और पुरुषार्थ आदि पाँचों समवाय एकसाथ हैं, उन्हें समझे, तो मिथ्याबुद्धि दूर होकर स्वभावोन्मुख हो जाती है। जिसने नियति का यथार्थ निर्णय किया, उसके आत्मा के ज्ञानस्वभाव का, केवली भगवान का और पुरुषार्थ का विश्वास भी साथ ही है। नियति का निर्णय कहो, स्वभाव का निर्णय कहो, केवलज्ञान का निर्णय कहो, पाँच समवाय का निर्णय कहो, सम्यक् पुरुषार्थ कहो—वह सब एकसाथ ही है।

नियत के साथ वाले दूसरे पुरुषार्थ आदि चार बोल हैं, उन्हें नियत में नहीं लेते; इसलिये उन्हें अनियत कहा जाता है। इसप्रकार नियत और अनियत—ऐसा वस्तुस्वभाव है। अथवा दूसरे प्रकार से—द्रव्य का एकरूप स्वभाव, वह नियतधर्म है और पर्याय में विविधता होती है, वह अनियतधर्म है;—इसप्रकार नियत और अनियत दोनों धर्म एकसाथ विद्यमान हैं। उनमें नियतिनय से आत्मा के द्रव्यस्वभाव का वर्णन किया; अब अनियतनय से पर्याय की बात करेंगे।

—यहाँ २६ वें नियतिनय से आत्मा का वर्णन पूरा हुआ।

महान तत्त्वार्थ-शास्त्र

हिन्दी भाषा में छपकर तैयार हो गया है

मोक्षाशास्त्र (सूत्रजी)

जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का निरूपण सुगम और स्पष्ट शैली में किया गया है और जिज्ञासुओं को समझने के लिये विस्तृत प्रश्नोत्तर नयप्रमाण से सुसंगत शास्त्राधार सहित दिये गये हैं।

तत्त्वप्रेमियों को यह ग्रन्थ पढ़ने योग्य है। अत: इसका मूल्य लागतमूल्य से भी २ रुपये कम रखा गया है।

पृष्ठ संख्या - करीब ९००

मूल्य पांच रुपया, पोस्टेज अलग

अधिक ग्रन्थ मंगवाने पर २५% कमीशन दिया जायगा।

— प्राप्तिस्थान —

श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक
प्रवचनों का अपूर्व लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों की—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार प्रवचन भाग १	६)	मूल में भूल	।।।)
समयसार प्रवचन भाग २	५)	मुक्ति का मार्ग	।।=)
समयसार प्रवचन भाग ३	४॥)	अनुभवप्रकाश	॥)
समयसार (हिंदी)		अष्टपाहुड़	३)
(मूल संस्कृत टीका सहित)	१०)	चिद्विलास	१=)
प्रवचनसार हिंदी		दसलक्षणधर्म	।।।)
(मूल संस्कृत टीका सहित)	५)	जैन बालपोथी	।)
आत्मावलोकन	१)	लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका	।) ।।
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें	१ ।=)	सम्यक्दर्शन	२)
द्वादशानुप्रेक्षा	२)	स्तोत्रत्रयी	।=)
अध्यात्मपाठसंग्रह	५॥)	भेदविज्ञानसार	२)
समयसार पद्यानुवाद	।)	पंचमेरु पूजन	।।।)
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=) ॥		
'आत्मधर्म मासिक' वार्षिक मूल्य	३)		

आत्मधर्म फाइलें
१-२-३-५-६-७ वर्ष — प्रत्येक का ३॥)

कुछ फाईलों का मूल्य २२॥) होता है लेकिन एक साथ लेने पर १७॥)

(डाकव्यय अतिरिक्त)

मिलने का पता—
श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : जमनादास माणेकचंद रवाणी, अनेकान्त मुद्रणालय, वल्लभविद्यानगर।
प्रकाशक : श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट के लिये-जमनादास माणेकचंद रवाणी।